Reg. No. 694/2009-10

ISSN : 2250-1193

अनुकृति

An International Refereed Research Journal

वर्ष–6, अंक–8

अक्टूबर–दिसम्बर, 2016

प्रधान सम्पादक
प्रो. विजय बहादुर सिंह
हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

सम्पादक
डॉ. रामसुधार सिंह
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
उदय प्रताप स्वायत्तशासी महाविद्यालय
वाराणसी

प्रकाशक
सृजन समिति प्रकाशन
वाराणसी (उ.प्र.)

विषयानुक्रमणिका

- वैदिक साहित्य का स्वरूप — 1-2
  डॉ0 हर्षवर्धन मिश्र
- कालिदासयुगीन गायन की प्रचलित विधाएँ — 3-4
  डॉ0 अनामिता कुमारी
- पूर्व मध्यकालीन उत्तर भारतीय मुद्रानिधियां : एक संक्षिप्त विवरण — 5-10
  हेमंत सिंह
- प्राकृतप्रातःसवनीयाध्वर्यवेतिकर्तव्यता — 11-16
  डॉ0 ज्ञानेन्द्र सापकोटा
- انقلاب اسلامی سے پہلے کی فارسی شاعری — 17-22
  ڈاکٹر ذیشان حید
- आप्रवास — 23-26
  सन्तोष कुमार
- 1990 से 2005 के महिला कहानीकारों की कहानियों में चित्रित नारी समस्या — 27-28
  राम आशीष तिवारी
- गोस्वामी तुलसीदास का भाव सौन्दर्य — 29-32
  रामयश पाण्डेय
- भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय — 33-36
  मनोज कुमार गौतम
- सूचना प्रौद्योगिकी से बदलता ग्रामीण जीवन स्तर : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण — 37-40
  राजा बाबू गुप्ता
- संस्कृत वाङ्मय में नारी के बदलते प्रतिमान–एक दृष्टि — 41-44
  अमित सिंह
- हेत्वाभासस्वरूपविमर्शः — 45-50
  डॉ0 राजेशकुमारसिंहः
- आचार्य शशधर के अनुसार वायु का स्वरूप — 51-52
  राजेश कुमार मिश्र
- परमार सम्राट सिन्धुराज — 53-54
  डॉ0 देवाराम
- कठोपनिषद् में प्रतिपादित अध्यात्मतत्त्व — 55-58
  डॉ0 अनुला मौर्य
- वृत्तरत्नाकरस्य सेतुटीकायाः वैशिष्टयम् — 59-62
  धर्मेन्द्र कुमार
- प्रेमचंद साहित्य वाया दलित साहित्य — 63-66
  डॉ0 अनुशब्द
- पूर्व–मध्यकालीन कश्मीर राज्य तथा उसके समकालीन राज्यों के मध्य अन्तर्राज्यीय सम्बन्ध — 67-70
  डॉ0 मंजु कश्यप

31/2/16

प्रेमचंद साहित्य वाया दलित साहित्य

डॉ0 अनुशब्द*

मराठी में दलित लेखन और आलोचना दोनों सर्वोच्च स्तर पर है। उसे इस स्तर पर पहुँचाने में मार्क्सवादका पूरा सहयोग लिया गया है। वहाँ अम्बेदकर और मार्क्सवाद आपस में इस कदर घुले–मिले हैं कि दोनों को अलगाना अब प्रायः नामुमकिन हो गया है। वहाँ भी हिंदी की तरह ही एक वर्ग है जो मार्क्सवाद से परहेज रखता है किन्तु दलित साहित्य की मुख्य धारा इस हठधर्मिता को मान्यता नहीं देती। वहाँ के मार्क्सवादी दलितोन्मुख और दलित मार्क्सोन्मुख हैं। इसकी जानकारी दलित लेखक शरणकुमार लिम्बाले की पुस्तक 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' में मिलती है।

"दलित साहित्य दलितों के संघर्ष का साहित्य है। अब दलित साहित्य आंदोलन को अम्बेदकरवाद के साथ–साथ मार्क्सवाद को भी स्वीकार करना होगा। तभी यह संघर्ष अर्थपूर्ण होगा, ऐसी समझ स्थापित करनी पड़ेगी।" कारण कि "दलितों की दरिद्रता का मूल धर्म और इतिहास में भले ही जिक्र हुआ लेकिन उसका आज का स्वरूप समूल परिवर्तित हो गया है। यह भी ध्यान देना होगा कि शासन की लोक कल्याणकारी योजनाएँ, आरक्षित स्थान और दलितों में नये रूप में बढ़ते हुए मध्यवर्ग के कारण दलितों की दरिद्रता का स्वरूप केवल धार्मिक और ऐतिहासिक नहीं रहा, वह और अधिक जटिल हुआ है।"

दलितों की आर्थिक दासता का कारण यहाँ की भारतीय समाज–व्यवस्था में छिपा हुआ है, तो इस मुक्ति का अंतिम मार्ग मार्क्सवाद और अम्बेदकरवाद दोनों के समन्वय में मिल सकेगा।

कहना न होगा कि अम्बेदकर का एक वर्णविहीन समाज जातिविहीन बनने का महास्वप्न भी जिसका जिक्र– ओमप्रकाश वाल्मीकि बार–बार अपनी पुस्तक में करते हैं– तभी पूरा हो सकता है जब मार्क्सवाद से मित्रता स्थापित की जाए। इस स्वप्न के पूरा होने की एक ही प्रक्रिया समझ में आती है कि वर्ण–व्यवस्था नष्ट हो , वर्ग–व्यवस्थामें पर्यवसित हो और, फिर बात आगे बढ़े।

हिंदी और मराठी के सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन में सबसे बड़ा अंतर यही है कि मराठी के दलित लेखक बुद्ध के स्थान पर मार्क्स को लेकर चलते हैं जबकि हिंदी के दलित लेखक मार्क्सवाद को परे कर बौद्ध धर्म की शरण में जाना ज्यादा उचित समझते हैं।

मराठी दलित विमर्श में भी दलित लेखकों का झुकाव बौद्ध विचार–प्रणाली की ओर था लेकिन तब उस दौर में नवबौद्ध लेखकों का जोर था। अंततः उन्होंनेइसका मोह छोड़ दिया है। मगर हिंदी में दलित विमर्श अभी मराठी के नवबौद्ध दौर से आगे नहीं बढ़ा है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि नैतिक मानवीय दृष्टिकोण को दलित साहित्य का मूलाधार मानते हैं और बुद्ध के आध्यात्मिक आख्यानों को इसका उत्स। उनका मानववाद मार्क्स से कहीं ज्यादा बुद्धोन्मुख है। वे लिखते हैं:

"दलित साहित्य की मान्यताएँ नैतिक मानवीय दृष्टिकोण पर आधृत हैं। इसीलिए उसके दार्शनिक आख्यानों में 'बुद्ध' की गहन मानवीय सोच उसे मानव केंद्रित करती है।"

वाल्मीकि वर्ण–व्यवस्था को अंतिम सत्य की ओर स्वीकार करते हैं और विकास की अगली संभावनाओं को स्थगित कर देते हैं जबकि लिम्बाले लिखते हैं कि "समाज में एक तरफ जातीय भावना प्रबल हुई है तो शोषितों का शोषण और उनके समान हित संबंध के कारण जातीय भावना के पार जाकर वर्गीय भावना भी बढ़ रही है। आंदोलन और संगठन में वाम विचारधारा जोर पकड़ रही है, जिसके कारण ऐसा लगता है कि जाति–व्यवस्था नष्ट होकर वर्ग–व्यवस्था अस्तित्व में आएगी।"

---

* सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर, नपाम, असम